Quest Journals
Journal of Education, Arts, Law and Multidisplinary
Volume 15 ~ Issue 3 (May - June 2025) pp: 90-94
ISSN(Online): 2347-2895
www.questjournals.org

Research Paper

स्त्री-मुक्ति के प्रश्न और स्त्री-रचनाकार

सुभद्रा कुमारी

अनुसन्धायिका (JRF)

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोध सारांश :–

विश्व की आबादी का लगभग आधा हिस्सा, आधी दुनिया का प्रतिनिधि स्त्रियों का कोई संगठित दल नहीं है। समाज के प्रतीक स्तर पर स्त्री समुदाय वंचित, दमित और शोषित है। स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों को ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक परिपेक्ष्य में समझने और जानने की आवश्यकता है। यह पूरी प्रक्रिया वस्तु से व्यक्ति बनने का संघर्ष है। स्त्री स्चनाकारों ने भिन्न-भिन्न विधाओं के माध्यम से स्त्री की दैहिक और मानसिक स्वतंत्रता को परत-दर-परत परिभाषित किया। कामकाली महिलाजों से लेकर ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों के दमन, संघर्ष, द्वंद और प्रतिरोध को भोगे हुए यथार्थ रुप में अंकित किया। मीरा सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती हुई निर्भिक होकर अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता के लिए जीवनपर्यंत संघर्ष किया।साहित्य में महिला लेखन के विविध विधाओ यथा कहानियों, कविताओं, संस्मरण, आत्मकथाओं आदि में स्त्री की दैहिक पीड़ा से परे जातीय, लैंगिक एवं वर्गीय पीड़ा दृष्टव्य हैं।

बीज शब्द :– *धर्मशास्त्र, कानून, प्रतिरोध, दासता, चेतना, मुक्ति, पीड़ा*

प्रस्तावना–

आधुनिक समाज में स्त्री को मानवता के संदर्भ में स्थापित करने के लिए उभरकर आए स्त्री-मुक्ति के प्रश्न शाश्वत महत्व रखती है। 'स्त्री-मुक्ति' का आशय है मानव-मुक्ति। जैसे एक स्त्री को शिक्षित करने का आशय है पुरे परिवार का वैचारिक, मानसिक, बौद्धिक परिष्कार। स्त्री को मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास के लिए यौन-शोषण, आर्थिक दोहन और दैहिक, मानसिक प्रताडनाओं से मुक्त करने में मानव-मात्र के मुक्ति के सूत्र हैं"।[1] स्त्री की स्वतंत्रता, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-मुक्ति केप्रश्न हाशिए का प्रश्न नही अपितु जीवन का केन्द्रीय प्रश्न हैं। व्यक्ति के रुप में अपने आप को स्थापित करना ही नारी-मुक्ति का केन्द्रीय प्रश्न हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ के शब्दों में "स्त्री-मुक्ति का सवाल स्त्रियों को अपने खुद के निर्णय लेने से लेकर एक मनुष्य से जुड़ा आजादी का प्रश्न है। स्त्री-मुक्ति सडे- गले विरोधी पितृसत्तात्मक की ब्राह्मणवादी और सामंती मूल्यों के प्रति विद्रोह भी है"। 'मुक्ति' का अर्थ आजादी नहीं बल्कि जीवन मूल्य है। स्त्री-मुक्ति की अवमानना तभी संभव है जब स्त्रियों में समान रुप से जागृति हो, स्त्रियों को देखने का दृष्टिकोण सामाजिक रुप से बदला जाये। स्त्री-अस्मिता और आस्तित्व के जैविक, धार्मिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संबंध में चेतना का उद्भव हो। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "स्त्री अपना निर्णय खुद ले सके, इसके लिए स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण व मानसिकता में बदलाव की जरुरत है, चूंकि वह भी पुरुष का दृष्टिकोण ही पालती है। पुरुष उसे सुरक्षित रख सकता है और वह घर में सुरक्षित है' यह भाव भी उसके आत्मविश्वास को तोडता है और हीनभावना भरता है। इसलिए जरुरी है उसका घर की सुरक्षा से मोहभंग होना। फलतः घर उसके लिए कैद, बूचड़खाना, खुटां, बाडा या मंजू गुप्ता के शब्दों में ' प्रतिभा का मकबरा' बन जाता है। नकारने की स्वतंत्रता और हिम्मत होना भी स्त्री-मुक्ति की मुख्य शर्तों में एक जरुरी शर्त है"।[2] दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने विक्टोरियन युग के नैतिक मूल्यों के सापेक्ष हमें हमारी परम्परा से काट दिया। मुगल

शासन के दौरान पर्दा प्रथा का शिकार होना पड़ा। सन् 1792 ई0 में प्रकाशित पुस्तक 'द विण्डीकेशन ऑफ राइट ऑफ वुमेन' मेरी वोल्सटनक्राफ्ट द्वारा आरंभ हुई स्त्री-मुक्ति की मुहिम लगभग ढाई सौ वर्षों की यात्रा तय कर चुकी है। यहां से नारी अधिकारों के घोषित स्वर को अभिव्यक्ति मिली है। इस आंदोलन के फलस्वरूप 1791 ईस्वी में कानून द्वारा स्त्री-शिक्षा का प्रावधान, 1792 में स्त्रियों को नागरिक अधिकार, 1794 के कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को सरलीकृत किया गया। फ्राँस की रिपब्लिकन क्रांति के बाद बने महिलाओं के समूह, जो समानता और स्वतंत्रता जैसी प्रश्नों को स्वर दे रही थी, की अध्यक्षा मेरी गूज को 'महिला अधिकार घोषणा-पत्र प्रकाशित कर 'स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों को उठाने अपराध के तहत' नारी के आदर्श गुण भूल जाने जैसे आरोप लगाकर मृत्युदंड दिया गया। यूरोप के बाद उत्तरी अमेरिका में मेरी ऑस्टिस ने भी इन्हीं स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों को उठाया। एलिजाबेंथ, कैंडी स्टेटन, लुक्रेशिया आदि ने न्यूयार्क में नारी अधिकारों को लेकर सन् 1848 ई0 में एक घोषणापत्र जारी किया। अमेरिका में 1848 ई के सेनेका फॉल कन्वेंशन से अमेरिका की स्त्रियों के अधिकारों के लिए की गई आंदोलन की शुरुआत मानी जाती है। 1860 ई के बाद इग्लैंड में 'सफरेजिस्ट' या 'मताधिकारवादी' महिलाओं का एक समूह तेजी से उभरा, जिनकी मांग पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त करना था। 1918 ई0 में ब्रिटेन में, सन् 1920 ई0 में संयुक्त राज्य अमेरिका में 'नारी मताधिकार' की शुरुआत हुई। वहीं सन् 1949 ईस्वी में प्रकाशित 'Le deuxieme sexe' 'द सेकेंड सेक्स' सीमोन द बोउवार द्वारा लिखी गई, जिसमें वास्तविक समानता की धारणा पर विस्तृत चिंतन किया गया था। नारीवादी आंदोलन के प्रसिद्ध विचारक सीमोन द बोउवार ने स्त्री-स्वाधीनता को परिभाषित करते हुए कहा "स्त्री-स्वाधीनता का अर्थ हुआ कि स्त्री-पुरुष से जिस पारस्परिक सम्बन्ध को निभा रही है, उससे मुक्त हो..... उसका अपना स्वतंत्र आस्तित्व होगा और वह पुरुष की होकर भी जीएगी। दोनो अपनी-अपनी स्वायत्तता में दूसरे का अनन्य रुप भी देखेंगे। सम्बंधों की पारस्परिकता और अन्योन्याश्रितता से चाह, अधिकार, प्रेम और आमोद–प्रमोद के अर्थ समाप्त नहीं हो जाएंगे; और नहीं समाप्त होंगे दो संवर्गो के बीच शब्द देना, प्राप्त करना, मिलन होना बल्कि दासत्व जब समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का तब व्यवस्था का यह सारा ढोंग समाप्त हो जाएगा"।[3] सन् 1929 में प्रकाशित 'वर्जीनिया वुल्फ' का विस्तृत निबंध 'ए रुम ऑफ वंस आन' में विशेष रुप से स्त्रियों की आत्माभिव्यक्ति की कमी पर प्रश्न उठाए गए। वुल्फ के अनुसार "यदि कोई महिला लेखन करना चाहती है तो उसके पास धन और अपना एक कमरा होना चाहिए"। बैटी फ्रीडन द्वारा रचित पुस्तक 'द फेमिनित मिस्टिक (1863ईस्वी) 'द सैकेंड स्टेज' में महिलाओं की मूल समस्या 'स्त्रीत्व' की इस धारणा को माना जिसके कारण यह माना जाता है कि महिलाओं को सुरक्षा व आनंद घर के भीतर ही मिलता है। जबकि सच यही है कि कोई भी स्त्री लगातार घर में रहकर निराशा या कुंठा ही महसूस करती है। पुरुषों की तरह उन्हें भी व्यक्तिगत जीवन में अधिकार मिलने चाहिए। 'जर्मेन गियर' नारीवाद की समर्थक आस्ट्रेलियाई लेखिका की पुस्तक 'द फीमेल यूंनक' 1970 ई0 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में नोरा- हैल्मर सम्वाद के जरिए स्त्री-मुक्ति संबंधी मान्यताएँ प्रस्तावित करती है। "नोरा ने हैल्मर से पूछा- तुम क्या मानते हो, मेरा सबसे पवित्र कर्तव्य क्या है? और जब उसने कहा 'अपने पति और बच्चों के प्रति तुम्हारा कर्तव्य' तब वह असहमत हुई और बोली- मेरा एक और कर्तव्य है, उतना ही पवित्र, अपने प्रति मेरा कर्तव्य..... मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ....उतनी ही जितने की तुम हो,या हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करुँगी ही"।[4] तथाकथित आध्यात्मिक अधिकार सम्पन्न वर्चस्ववादी परम्पराएँ स्त्री-पक्ष में दासत्व की भावना को जन्म देकर हीन भाव के एहसास से आजीवन जकड़ी रहें। केट मिलेट (कैथरीन मौरे) के अनुसार "बहुत सी स्त्रियाँ किसी भी तरह के पक्षपात या भेदभाव को अस्वीकार करती हैं क्योंकि उक्त सभी स्त्रियों को व्यवस्था के अनुकूल ढ़ाल दिया गया है और तब किसी भी तरह के प्रमाण को ढूंढ पाना मुश्किल हो जाता है.....स्त्री की समाज में वही पहचान है जैसी पुरुष द्वारा निर्मित की गई है और उस पहचान को पुरुष ने अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए ही निर्मित किया है"।[5] उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में फ्रानना सारोबजी, रुक्मा बाई, रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई, आनन्दी बाई जोशी, सावित्री बाई फूले आदि ने रुढियो के विरुद्ध, स्त्री अधिकारों के प्रश्न को कड़े स्वर में उठाया। जाति प्रथा और स्त्री-पराधीनता के विरुद्ध शिक्षा सहित सुधार के अन्य क्षेत्रों में सावित्री बाई फूले सम्भवतः प्रथम महिला थी जिन्होंने मुक्ति-चेतना को एक प्रतिनिधि स्वर दिया है। बंगाल की लेखिका रुकैया सखावत हुसैन की कहानी 'सुलताना का सपना' (1905ई) में मुस्लिम समाज की नारी मुक्ति का सपना देखने का साहस किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध से स्त्री-स्वातंत्र्य चेतना की मुखर अभिव्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं में लगातार दीखती रही। हंस, चाँद, माधुरी, जागरण, सुधा आदि पत्र-पत्रिकाओं में पुरुष वर्चस्व की विविध रुपों, प्रेम और विवाह के मामलों में स्वतंत्र निर्णय, धार्मिक रुढ़ियाँ, पारिवारिक गुलामी जैसे विषयों पर स्त्री रचनाकारों के लेख छपते थे। 'स्त्री दर्पण' पत्रिका की लेखिका उमा नेहरु के लेख में यूरोपीय नारीवादियों की तरह उग्र रुढ़िभंजक अभिव्यक्ति

मिलती है। स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को प्रखर रूप महादेवी वर्मा अपने निबन्धों 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में सामने लाती है। स्त्रियों के आर्थिक स्वावलम्बन, सामाजिक रुढियो के प्रतिकार, चेतना विस्तार आदि पर विशेष विचार करते हुए स्त्रियों की पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, गुलामी का प्रतिकार किया "श्रमजीवी श्रेणी की स्त्रियों के विषय में तो कुछ विचार करना भी मन को खिन्नता से भर देता है। उन्हें गृह कार्य और संतान का पालन करके भी बाहर के कामों में पति का हाथ बटाना पड़ता है। सवेरे 6 बजे, गोद मे बालक को तथा भोजन के लिए एक मोटी काली रोटी लेकर मजदूरी के लिए निकली हुई स्त्री जब 7 बजे संध्या समय घर लौटती है तो संसार भर का आहत मातृत्व मानो उसके शुष्क होठों से कराह उठता है। उसे श्रान्त, शिथिल शरीर से फिर घर का आवश्यक कार्य करते और उस पर कभी-कभी मद्यप पति के निष्ठुर प्रहारों को सहते देखकर करुणा को भी करुणा आये बिना नहीं रहती। मिलो, कारखानों आदि में काम करने वाली स्त्रियों की दुर्दशा तो प्रकट ही है। परन्तु हमारे वृहत् महिला सम्मेलन तथा बड़े-बड़े सुधार के आयोजन उन्हें भूल जाते हैं जिनकी कार्य-पटुता के साथ अज्ञान का विचित्र संगम हो रहा है। कृषक तथा अन्य श्रमजीवी स्त्रियों की इतनी अधिक संख्या है कि बिना उनकी जागृति के हमारी जागृति अपूर्ण रहेगी और हमारे स्वत्व अर्थहीन समझे जाएंगे। उत्तराधिकार मिल जाने पर भी हमारी मजदूर स्त्रियां निर्धन पिता तथा दरिद्र पति से दरिद्रता के अतिरिक्त और क्या पा सकेंगी! इनके लिए तो ज्ञान के धन की ही विशेष आवश्यकता है जिससे वे कारखानों में, मिलों मे शारीरिक श्रम करती हुई भी अपने स्वत्वों की हत्या न होने दें, व रन् प्रत्येक अन्याय का विरोध करने को उद्यत रहें"।[6] प्रत्यक्षतः स्पष्ट है कि शिक्षा, जागरुकता और अपने अधिकारों के लिए उठाए प्रश्न, रुढिवादी मानसिकता और परंपरा के नाम पर होने वाले शोषण के प्रति प्रखरता से विरोध, आत्म सम्मान से जीने का अधिकार जैसे विषय पर आज भी उतनी ही प्रासंगिक रूप से चिंतन-मनन की आवश्यकता हैं। स्पष्ट स्वर में वर्मा जी कहती है कि स्त्री के अधिकार भिक्षावृत्ति से न मिले है और न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है"। सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में 'स्त्री की मुक्ति' 'के स्वर 'झाँसी की रानी' और 'जाँलियावाला बांग', 'मेरा नया बचपन' आदि कविताओं में स्त्री- स्वतन्त्रता सबकों छोड़ने में नहीं 'अपनाने' में की बात कर पूरे संवेदना और वैभव के साथ सूत्रबद्ध है। 1960 के दशक से विश्व भर की महिलाओं की शैक्षिक, राजनैतिक और आर्थिक अवसर/समान अधिकार के लिए आन्दोलनों ने जोर पकड़ा।1972 ई. में नारी-मुक्ति आंदोलन की विजय, संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लिंग के आधार पर भेद-भाव प्रतिबन्धित कर समान अधिकार संशोधन बिल के रूप में प्राप्त हुई।

धर्मशास्त्र बनाम कानून समाज की मान्याताएं, रीति-रिवाज, धार्मिक संस्कार आदि कानून द्वारा नहीं बदले जा सके, धर्मशास्त्र ने ऐसे कई व्यवस्थाएँ स्त्रियों की पराधीनता के लिए कर रखी थी। 1970 ई° के बाद नारी-मुक्ति की मुहिम यौन-स्वतंत्रता और देह पर आकर केन्द्रित हो गयी। "एक और महाश्वेता देवी जैसी लेखिकाएँ है जो स्त्रियों की बदहाल स्थिति और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करती दिखती हैं, तो दूसरी और देह की आजादी को ही नारी-मुक्ति का पर्याय मानती हमारी बोल्ड लेखिकाएँ। ये पुरुषों पर उनके उन्हीं हथियारों से हमला कर रही हैं, जिनसे अब तक वे स्त्रियों के खिलाफ करते आये है"।[7] भिन्न-भिन्न देश, समुदाय और वर्ग की स्त्रियों की अलग- अलग मुक्ति के स्वर एवं समस्याएँ हैं। दर्द के चेहरे की प्रकृति भिन्न होने पर भी टिस एक-सा है। 'प्यार के कई नाम है'शीर्षक कविता के अन्तर्गत इन्दु जैन का स्वर प्यार के कई नामों को पहचानने और जीने की कोशिश है, नामों के बीच दरारों से फूटता दर्द हैं "

"क्रोध-जो सामूहिक चेतना का उत्स है, जो विद्रोह जगाता है,
जो संघर्ष की ओर ठेलता है।
पसीना पोछती हुई औरतें, दफ्तर जाती हैं, नमक से नमक बहाती है"।[8]

सुमन राजे की लम्बी कविता 'मनु पुत्र के नाम खुली चिट्ठी'? में स्त्री- वेदना और स्त्री-चेतना से अनुप्राणित प्रतिनिधि कविता है, इसमें माँ अपने बेटे से दुख-दर्द को सांझा करती हुई कहती है।

"मेरी तुम अगर बेटी होते तो
इस खत की जरूरत शायद नहीं होती
मेरे चिरे हुए नाखून और कटी फटी
खुरदरी एडियां अपनी परंपरा तुम्हें सौंप चुकी होती
अपनी हर पीड़ा के उलटती पलटती

तुम महसूस करती हर बार मेरी करकराती चीखें
उसी तरह जैसे आज दर्द से कराहती हुई
बार-बार अपने हाथ वहां ले जाती हूँ
जहाँ मेरी मां ले जाया करती थी"।[9]

उक्त सन्दर्भ के आलोक में संपूर्ण स्त्री जाति की पीड़ा, मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक संवेदना अपने आस्तित्व और सदियों से अनुत्तरित प्रश्नों को चिन्तन के कठोर धरातल पर उधेड़ती हुई प्रतीत होती हैं।

निर्मला पुतुल की कविता 'क्या तुम जानते हो' में लेखिका पूरे पितृसत्तात्मक समाज के सामने खुले स्वर में पूछती हैं–

"सपनो में भागती
एक स्त्री का पीछा करते कभी देखा है तुमने
उसे रिश्तों के कुरुक्षेत्र में अपने आपसे लड़ते।
तन के भूगोल से परे एक स्त्री के मन की गांठे खोलकर कभी पढ़ा हैं तुमने
उसके भीतर का ख़ौलता इतिहास
अगर नहीं ?
तो फिर जानते क्या हो तुम
रसोई और विस्तर से परे
एक स्त्री के बारे में"।

इस प्रकार स्त्रियों के पूर्व निर्धारित मानदण्डो एवं स्त्रीत्व की एक साँचे को गढ़ने की स्थिति को गहरे आत्ममन्थन की चुनौती देती जान पड़ती है। मर्यादाओं के बन्धन से इतर स्त्री को मानव मात्र के रूप में प्रतिष्ठित होते देखना चाहती हुई कवयित्री कहती है "मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से"।[10] इस प्रकार व्यवस्था की शोषण संदर्भित सदियों की यातना से प्रतिरोध के उग्र एवं आक्रोशित स्वर, शोषणात्मक व्यवस्था के प्रतिकार का भाव गम्भीरता से मुखर है। अनामिका के कविता 'स्त्रियाँ' का भाव स्त्रियों के वजूद की एहसास दिलाती हैं। नये ढंग से देखे-सुने, समझे जाने की मांग करने पर भिन्न-भिन्न लांछनों से उपेक्षित की जाती स्त्रियों की मर्माहत पीडा की अभिव्यक्ति है।

"एक दिन हमने कहा हम भी इंसान है-
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी0ए0 के बाद नौकरी का पहला विज्ञापन।
देखो तो ऐसे जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती हुई आग।
सुनो हमें अनहद की तरह और समझो
जैसे समझी जाती है
नई-नई सीखी हुई भाषा।
इतना सुनना था कि अधर में लटकती हुई
एक अदृश्य टहनी से टिड्डीयाँ उड़ी और रंगीन अफवाहें चीखती हुई चीं-चीं

'दुश्चरित्र' महिलाएं, दुश्चरित्र महिलाएँ- किन्ही सरपरस्तों के दम पर फूली-फैली अगरधत्त जंगली लताएँ"।[11] बात सिर्फ उपेक्षिता की नहीं अनवरत जहलत, श्रमदोहन और यौन-दोहन, स्त्रियों की असमान आर्थिक स्थिति, परिवार, समुदाय, रिश्ते-नाते और अर्थतंत्र सब प्रतिकूल होता है। वर्तमान में स्त्री-लेखन यौन-कुण्थाओं और वर्ग पूर्वाग्रहों से मुक्त हो गया है। "एक स्त्री-आन्दोलन ही है जो ठीक से समझता है कि वैश्वीकरण का सही समाधान सार्वभौमीकरण है। वैश्वीकरण एकध्रुवीय विश्व का उत्पाद है। इसका दर्शन संक्षेप में यह है एक दर्शन, एक बिम्ब, एक विश्व दृष्टि दुनिया के विशिष्ट कोने से उठे और पूरी दुनिया पर छा जाय। जस का तस। अस्मिता के प्रश्नों द्वारा

प्रस्तावित सार्वभौमीकरण मानता है कि दुनिया के हर कोने से अपना विशिष्ट अनुभवखंड उठे और वह छन -छनाकर मानव-मात्र का उभयनिष्ठ अनुभव बने। कोई किसी पर दादागीरी न छाँटे। जो हो, साझा हो। कोई पदानुक्रम न हो कायम और चीजें परिवर्तन को प्रस्तुत रहें। सम्वाद सबका सबसे हो।मुश्किल यहीं तो घिर आयी है कि अनुभव संचारित नहीं हो रहे, संचरण ही एकमात्र अनुभूति रह गयी है"।[11]

निष्कर्ष: समकालीन स्त्री आलोचकों, रचनाकारों की रचनाओं / आलोचनाओं में सैद्धांतिकी, व्यवहारिक, राजनीतिक रूप से स्त्री-जीवन के अधिकांश परतों की अनुभूति को शाब्दिक- साहित्यिक अभिव्यक्ति दर्ज हुई हैं।'मुक्ति' के अर्थ से लेकर प्रश्न तक,वाद से लेकर विमर्श तक हम समझ सकते हैं। मनोविश्लेषण की प्रक्रिया से होकर साम्य के रास्ते अस्मिता के प्रश्नों से रुबरु होते जान पड़ते है। उत्तर की खोज करने की, समाधान की दिशा में सोचा गया हमारी एक छोटी सी पहल को आत्मसात करने की जरूरत है। सांस्कृतिक और मानसिक दासता की जंजीरे से छूटकर वृहत्तर आत्मिक संधान से जुड़कर प्रबल प्रतिपक्ष तैयार करने की विशेष आवश्यकता द्दष्टव्य हैं।

संदर्भ–

1) गिरी, राजीव रंजन(संपादक), स्त्री-मुक्ति: यथार्थ और यूटोपिया, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण:2023,पृष्ठ:192
2) गुप्ता रमणिका, स्त्री-मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण :2022,पृष्ठ:163
3) बोउवार, सीमोन स्त्री उपेक्षिता (अनु0-प्रभा खेतान), पृष्ठ :306
4) ग्रियर जर्मेन, बधिया स्त्री (अनुवादक:मधु बी° जोशी), पृष्ठ :20
5) गिरी, राजीव रंजन(संपादक), स्त्री-मुक्ति: यथार्थ और यूटोपिया, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण:2023,पृष्ठ :142
6) वर्मा महादेवी, श्रृंखला की कड़िया, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, तीसरा संस्करण :2015,पृष्ठ :19
7) गिरी, राजीव रंजन(संपादक), स्त्री-मुक्ति: यथार्थ और यूटोपिया, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण:2023,पृष्ठ:138
8) राजे सुमन, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण:2022,पृष्ठ:272
9) राजे सुमन, यात्रादंश, पृष्ठ :50
10) पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृष्ठ:8-9
11) अनामिका, स्त्री-विमर्श का लोक-पक्ष, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण: 2023, पृष्ठ: 110